दिल्ली उच्च न्यायालय: नई दिल्ली

निर्णय की तिथि: 20 फरवरी, 2025

इस मामले में:

सि.वा.(वाणि) 494/2016

CS (COMM) 494/2016

एआर. जय कुमार मीरानी .....वादी

द्वारा: श्री जय सहाय एंडलॉ, श्री आशुतोष राणा, अधिवक्तागण

बनाम

पंजाब नेशनल बैंक ..... प्रतिवादी

द्वारा: राजेश कत्याल, श्री एस एस कत्याल, अधिवक्तागण

कोरमः
माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभ्रमोणयम प्रसाद

निर्णय

1. वर्तमान वाद प्रारंभ में वादी द्वारा संपत्ति सं. 16-बी/1, देश बंधु गुप्ता रोड, देव नगर, नई दिल्ली, क्षेत्रफल 3872 वर्ग फुट (इसके बाद "किराया परिसर" के रूप में) के संबंध में ₹1,48,64,343/- की वसूली तथा पट्टा विलेख के विशिष्ट निष्पादन हेतु दायर किया गया था। यह वाद निम्नलिखित अनुतोष प्राप्त करने के लिए दायर किया गया है:-

"(i) उपर्युक्त पट्टे के विशिष्ट निष्पादन हेतु, प्रतिवादी को निर्दिष्ट कर आदेश दिया जाए कि वह वादपत्र के उपाबंध "क" के अनुसार पट्टा विलेख का निष्पादन एवं पंजीकरण करे, जो उपयुक्त मूल्य के स्टाम्प पत्रों पर पहले से ही अंतिम रूप से तैयार दस्तावेज़ है, तथा अगस्त 2002 से भुगतान की तिथि तक 24% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित सुरक्षा जमा की राशि का भुगतान करे, और उक्त पट्टा करार की शर्तों के अनुसार भविष्य का किराया भी वादी को अदा करे।

(ii) ₹1,48,64,343/- की राशि की वसूली हेतु, तथा उक्त राशि पर वाद दायर करने की तिथि से भुगतान की तिथि तक 18% प्रति वर्ष की दर से, त्रैमासिक चक्रवृद्धि के साथ, भविष्य का ब्याज प्रदान किया जाए।

(iii) वाद की लागत भी वादी को प्रदान की जाए।

और/या

(iv) प्रकरण के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए, न्यायालय जो भी अन्य या आगे के आदेश उचित एवं न्यायसंगत समझे, पारित किए जाएँ।"

2. चूँकि पट्टे की अवधि समाप्त हो चुकी थी, इसलिए इस न्यायालय ने दिनांक 04.05.2004 के आदेश द्वारा किराये के परिसर का निरीक्षण करने, यदि परिसर में कोई सामान पड़ा हो तो उसकी सूची (इन्वेंटरी) तैयार करने तथा वाद परिसर की स्थिति एवं अवस्था का पता लगाने के लिए एक स्थानीय आयुक्त नियुक्त किया। स्थानीय आयुक्त को यह भी निर्दिष्ट किया गया कि

वह किरायेदार/प्रतिवादी से परिसर की चाबियाँ प्राप्त करे और वाद परिसर का खाली कब्ज़ा मकान-मालिक/वादी को सौंपे। इस आदेश के निर्देशों के अनुपालन में, दिनांक 06.05.2004 को स्थानीय आयुक्त की उपस्थिति में खाली कराए गए परिसर का कब्ज़ा वादी को सौंप दिया गया। इसके पश्चात् वादी ने सि.प्र.सं. (सिविल प्रक्रिया संहिता) के आदेश VI नियम 17 के अंतर्गत वादपत्र में संशोधन हेतु एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 26.04.2006 के आदेश द्वारा अनुज्ञात कर लिया। अतः संशोधन के पश्चात्, वादी का वाद मात्र ₹1,75,56,334/- की वसूली हेतु एक साधारण वाद में परिवर्तित हो गया।

3. अनावश्यक विवरणों को अलग रखते हुए, वादपत्र में वर्णित तथ्य इस प्रकार हैं:-

क. किराये के परिसर को तत्कालीन मालिकों अर्थात् श्री ओ. पी. चोपड़ा तथा श्री धर्मवीर खट्टर द्वारा दिनांक 18.03.1986 के पट्टा विलेख के माध्यम से प्रतिवादी को मासिक ₹29,396/- के किराये पर, दिनांक 01.01.1986 से प्रारंभ होने वाली पाँच वर्षों की अवधि के लिए किराये पर दिया गया था, जिसमें अंतिम अदा किए गए किराये पर 15% की वृद्धि के साथ अगले पाँच वर्षों के लिए पट्टा जारी रखने का विकल्प भी सम्मिलित था।

ख. तत्कालीन मालिकों ने दिनांक 26.06.1986 के विक्रय विलेख के माध्यम से उक्त संपत्ति/किराये के परिसर को वादी सहित सात

अन्य व्यक्तियों को बेच दिया, जिसके फलस्वरूप वे सभी किरायेदार परिसर के मालिक बन गए।

ग. दिनांक 01.01.1991 को प्रतिवादी ने पट्टे को अगले पाँच वर्षों के लिए नवीनीकृत करने का विकल्प प्रयोग किया। परिणामस्वरूप मासिक किराया ₹29,396/- से बढ़ाकर ₹33,805/- कर दिया गया।

घ. दिनांक 19.09.1995 को वादी ने प्रतिवादी को एक पत्र लिखकर यह सूचित किया कि पट्टा विलेख दिनांक 31.12.1995 को समाप्त हो जाएगा और यदि प्रतिवादी किराये के परिसर में आगे भी बने रहना चाहता है, तो वह वादी द्वारा स्वीकृत नई शर्तों एवं नियमों पर ऐसा कर सकता है।

ङ. दिनांक 14.09.1995 को प्रतिवादी/बैंक ने वादी को पत्र लिखकर किराये के परिसर के पट्टे को जारी रखने की अपनी मंशा व्यक्त की तथा यह कहा कि वह नए पट्टा विलेख की नई शर्तों एवं नियमों पर चर्चा करने के लिए तैयार है। इसके अतिरिक्त यह भी सूचित किया गया कि पट्टे के नवीनीकरण हेतु आवश्यक निर्देश प्राप्त करने के लिए यह मामला उसके ज़ोनल ऑफिस को संदर्भित किया जाएगा।

च. दिनांक 17.10.1995 को प्रतिवादी/बैंक ने वादी को एक और पत्र लिखकर नया पट्टा विलेख निष्पादित करने की अपनी मंशा व्यक्त की तथा यह सूचित किया कि किराये में वृद्धि के विषय पर संयुक्त बैठक में चर्चा की जाएगी।

छ. दिनांक 08.11.1995 को वादी ने प्रतिवादी को एक पत्र लिखकर उस समय प्रचलित बाजार किराये की जानकारी दी तथा यह बताया कि शीघ्र ही एक बैठक निर्धारित की जाएगी, ताकि नए पट्टा विलेख के निष्पादन से संबंधित विवरणों को अंतिम रूप दिया जा सके।

ज. दिनांक 13.12.1995 को समय की समाप्ति के कारण प्रतिवादी का पट्टा समाप्त हो गया।

झ. दिनांक 15.02.1999 को वादी ने किराये के परिसर के सात सह-स्वामियों के साथ एक समझौता ज्ञापन किया, जिसके तहत उक्त सात सह-स्वामियों ने अपनी-अपनी हिस्सेदारी वादी के पक्ष में त्यागने का निर्णय लिया, जिसके लिए कुल ₹40 लाख की राशि निर्धारित की गई, जिसे सातों सह-स्वामियों के बीच विभाजित किया जाना था।

ञ. प्रतिवादी, नए पट्टा विलेख के अंतर्गत देय किराये के प्रश्न पर समझौता-वार्ताओं का बहाना बनाकर, दिनांक 31.12.1995 को

पट्टा विलेख की अवधि समाप्त होने के बाद भी किराये के परिसर के कब्ज़े में बना रहा। प्रतिवादी ने किसी भी प्रकार का किराया अदा नहीं किया। दिनांक 21.06.2001 को वादी ने प्रतिवादी को एक और पत्र लिखकर यह कहा कि प्रतिवादी पट्टा विलेख के नवीनीकरण में टाल-मटोल कर रहा है। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी/बैंक दिनांक 31.12.1995 से बिना किराया अदा किए किराये के परिसर पर अनधिकृत कब्ज़े में बना हुआ है।

ट. दिनांक 27.06.2001 को प्रतिवादी/बैंक ने एक प्रमाण-पत्र जारी किया, जिसमें यह बताया गया कि वादी तथा किराये के परिसर के अन्य सह-स्वामी उसके मकान-मालिक हैं और यह कि दिनांक 31.12.1995 को पट्टे की अवधि समाप्त होने के पश्चात्, उसने दिनांक 01.01.1996 से 27.06.2001 (अर्थात् जून 2001 तक) ₹33,805/- प्रति माह की दर से नकद आदेश जारी किया है, जिसकी कुल राशि ₹22,31,120/- होती है। उक्त प्रमाण-पत्र में यह भी उल्लेख किया गया है कि वार्ताएँ पूर्ण होने के पश्चात् किराये की राशि में परिवर्तन किया जाएगा।

ठ. लगभग जनवरी 2002 में, वादी और प्रतिवादी बैंक के बीच एक समझौता स्थापित किया गया, जिसमें बैंक के महाप्रबंधक श्री पी. एल. मदान ने प्रबंध निदेशक श्री एस. एस. कोहली के नेतृत्व में

कार्य करते हुए समझौता-वार्ता की जिसके तहत, प्रतिवादीगण ने दिनांक 01.01.1996 से मासिक किराये के रूप में ₹1,20,032/- अदा करने पर सहमति व्यक्त की।

ड. दिनांक 26.04.2002 को प्रतिवादी बैंक ने वादी को बढ़े हुए किराये के साथ पट्टे के नवीनीकरण के लिए एक पत्र भेजा और इसके साथ प्रारूप पट्टा विलेख संलग्न किया, जिसमें दिनांक 01.01.2001 से 31.12.2005 तक पाँच वर्षों की अवधि के लिए मासिक किराया ₹1,20,032/- निर्धारित किया गया था।

ढ. दिनांक 22.05.2002 को प्रतिवादी बैंक ने दिनांक 26.04.2002 के अपने पूर्ववर्ती पत्र के संदर्भ में पट्टा विलेख के नवीनीकरण और किराये में वृद्धि के लिए एक और पत्र भेजा और इसके साथ पट्टा विलेख का अंतिम प्रारूप संलग्न किया। इस प्रारूप में दिनांक 01.01.2001 से 31.12.2005 तक पाँच वर्षों की अवधि के लिए मासिक किराया ₹1,20,032/- दर्शाया गया था।

ण. इसके पश्चात्, प्रतिवादी बैंक ने पट्टा विलेख के निष्पादन के उद्देश्य से ₹28,810/- का स्टाम्प पेपर खरीदा और पक्षकारगण के बीच सहमति से तय शर्तें स्टाम्प पेपर पर अंकित की गईं। उक्त पट्टा विलेख की प्रतिलिपि वादी को सौंप दी गई।

त. वादी और प्रतिवादी के बीच यह सहमति हुई कि मासिक किराया ₹1,20,032/- पट्टा विलेख की समाप्ति की तिथि अर्थात् 31.12.1995 से दिया जाएगा। प्रतिवादी ने स्टाम्प ड्यूटी बचाने के लिए पट्टा विलेख की अवधि 01.01.2001 से 31.12.2005 दर्शाई। इसके अनुरूप, प्रतिवादी ने दिनांक 20.08.2002 का एक प्रमाण-पत्र जारी किया, जिसमें उसने ₹1,20,032/- प्रति माह किराये के अपने दायित्व को स्वीकार किया। हालांकि, किराया किस अवधि अर्थात् 01.01.1996 से देय है, इसका उल्लेख नहीं किया गया, परंतु लगभग ₹49,00,000/- की कुल राशि किराये के रूप में देय मानी गई।

थ. उपर्युक्त सभी तथ्यों और परिस्थितियों के बावजूद, प्रतिवादी ने वादी के पक्ष में अंतिम पट्टा विलेख का निष्पादन और पंजीकरण नहीं किया। इसलिए, वर्तमान वाद दायर किया गया।

4. प्रतिवादी ने संशोधित वादपत्र के विरुद्ध अपना लिखित बयान दायर किया, जिसमें अन्य बातों के साथ यह कहा गया कि–

i. वाद में मांगी गई अनुतोष परिसीमा द्वारा वर्जित है,

ii. वादी द्वारा दायर वाद पक्षकारगण के असंयोजन के कारण अयोग्य है,

iii. किसी भी समय पक्षकारगण के बीच ऐसा कोई समझौता नहीं हुआ था जिसमें प्रतिवादी ने दिनांक 01.01.1996 से मासिक ₹1,20,032/- का भुगतान करने पर सहमति व्यक्त की हो।

iv. प्रतिवादी द्वारा वादी को दिनांक 20.08.2002 का प्रमाण-पत्र किराये के बकाया के कारण नहीं दिया गया था, बल्कि यह प्रमाण-पत्र वादी द्वारा अपने पुत्र के किसी विदेशी विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए अपनी वित्तीय स्थिति दर्शाने हेतु था।

v. पट्टे की शर्तों एवं नियमों के संबंध में पक्षकारगण के बीच समझौता-वार्ता इसलिए सफल नहीं हो सकी क्योंकि वादी सभी सह-स्वामियों के स्वामित्व विवरण प्रदान करने में असफल रहा।

5. वादी ने उपरोक्त दावों का खंडन करते हुए अपनी प्रतिकृति दायर की।

6. न्यायालय ने दिनांक 29.05.2007 के आदेश के माध्यम से निम्नलिखित मुद्दे विरचित किए:-

"1. क्या वादी, वाद में दावा की गई राशि ₹1,75,56,334/- प्रतिवादी से प्राप्त करने का अधिकारी है? ओपीपी

2. क्या वादी, अपने दावे के अनुसार ब्याज प्राप्त करने का अधिकारी है या किसी अन्य दर पर ब्याज का हकदार है, और यदि हाँ, तो किस अवधि के लिए? ओपीपी

3. क्या यह वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है? ओपीपी

4. क्या यह वाद आवश्यक पक्षकारगण के असंयोजन के कारण अयोग्य है? ओपीपी

5. क्या प्रतिवादी द्वारा दिनांक 20 अगस्त 2002 को जारी किया गया प्रमाण-पत्र प्रतिवादी के लिए बाध्यकारी नहीं था? ओपीडी

6. क्या पक्षकारगण के बीच सहमति अनुसार दिनांक 01.01.1996 से मासिक किराया ₹1,20,032/ - था? ओपीपी

7. अनुतोष।"

7. इसके बाद, वादी ने अपने साक्ष्य का संचालन करते हुए स्वयं को PW-1 के रूप में पेश किया। प्रतिवादी ने DW-1 के रूप में श्री आर. के. गुप्ता, जो 1996 से मई 2004 तक प्रतिवादी बैंक के वरिष्ठ प्रबंधक रहे, और DW-2 के रूप में श्री वी. के. पराशर, वरिष्ठ प्रबंधक, पंजाब नेशनल बैंक को पेश किया।

8. वादी के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 01.01.1996 से 31.05.2004 तक, अर्थात् 31.12.1995 को पट्टा विलेख की समाप्ति की तिथि से, प्रतिवादी बैंक से ₹1,75,56,334/- की राशि देय और प्राप्त होने योग्य है। उक्त राशि का विवरण निम्नानुसार है:-

<u>तालिका क</u>

01.01.1996 से 31.03.2003 तक मासिक ₹1,20,032/- के किराये के रूप में।	*₹1,04,784/-*
किराये के बकाये पर साधारण ब्याज 18% प्रति वर्ष की दर से, उस माह से जब किराया देय हुआ, और 31.03.2003 तक।	*₹68,92,237/-*

वादी को प्रतिवादी द्वारा पहले ही अदा की गई राशि को घटाकर।	*₹24,70,678/-*
कुल ('क')	*₹1,48,64,343/-*

<u>तालिका ख</u>

01.04.2003 से 31.05.2004 तक 14 महीनों की अवधि के लिए मासिक ₹1,20,032/- के हिसाब से किराया।	*₹1,20,032 × 14 = ₹16,80,448/-*
किराये के बकाये पर साधारण ब्याज 18% प्रति वर्ष की दर से, उस माह से जब किराया देय हुआ, और 31.03.2005 तक।	*₹4,41,126/-*
नगर निगम को देय बकाया जल शुल्क के रूप में।	*₹51,902/-*
नगर निगम को देय बकाया बिजली शुल्क के रूप में।	*₹15,739/-*
जनवरी 2002 के करार की शर्तों के अनुसार छह महीने के नोटिस अवधि का किराया।	*₹7,20,192/-*
किराये के परिसर को प्रतिवादी द्वारा हुए नुकसान और उसकी मरम्मत एवं पुनर्स्थापन के खर्च के रूप में।	*₹2,19,176/-*
कुल	*₹31,28,583/-*
प्रतिवादी से प्राप्त ₹29,07,270 की राशि पर कटौती की गई टीडीएस को घटाकर।	*₹4,36,592/-*
कुल ('ख')	*₹26,91,991/-*

<u>तालिका ग</u>

कुल ('क')	*₹1,48,64,343/-*
कुल ('ख')	*₹26,91,991/-*
कुल योग	*₹1,75,56,334/-*

9. वादी आगे प्रस्तुत करता है कि प्रतिवादी ने अभिस्वीकृत किया है कि पट्टा विलेख की अवधि समाप्त हो गई है और बैंक ने किराये के परिसर के लिए नया पट्टा विलेख निष्पादित करने की अपनी मंशा व्यक्त की थी। वादी के अधिवक्ता का तर्क है कि 01.01.1996 से प्रतिवादी बैंक किराये के परिसर पर अनधिकृत कब्जे में था। वादी यह भी प्रस्तुत करता है कि मासिक किराया ₹1,20,032/- सहमति अनुसार तय किया गया था, जिसे प्रतिवादी ने दिनांक 26.04.2002 और 22.05.2002 के पत्रों के माध्यम से अभिस्वीकृत किया। उक्त पत्रों के माध्यम से प्रतिवादी बैंक ने वादी को सूचित किया कि वे नए पट्टा विलेख का निष्पादन करने के लिए तैयार हैं और उसने इन पत्रों के साथ पट्टा विलेख का अंतिम प्रारूप भी भेजा। प्रारूप में दिनांक 01.01.2001 से 31.12.2005 तक मासिक किराया ₹1,20,032/- दर्शाया गया था। वादी के अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि प्रतिवादी ने पट्टा विलेख के निष्पादन के लिए ₹28,810/- का स्टाम्प पेपर भी खरीदा और स्टाम्प पेपर पर अंकित टाइप की गई पट्टा विलेख की प्रतिलिपि वादी को सौंप दी गई। वादी यह भी प्रस्तुत करता है कि प्रतिवादी बैंक द्वारा दिनांक 20.08.2002 का प्रमाण-पत्र जारी किया गया, जिसमें दर्शाया गया कि स्टाम्प ड्यूटी बचाने के लिए पट्टा विलेख की अवधि 01.01.2001 से 31.12.2005 दर्शाई गई। हालाँकि, वादी और प्रतिवादी के बीच यह सहमति थी कि मासिक किराया ₹1,20,032/- पट्टा विलेख की समाप्ति 31.12.1995 से दिया जाएगा। प्रतिवादी ने प्रमाण-पत्र जारी कर ₹1,20,032/- प्रति माह का दायित्व अभिस्वीकृत किया, लेकिन किस

अवधि से किराया देय था अर्थात् 01.01.1996 से का उल्लेख नहीं किया; इसके बजाय लगभग ₹49,00,000/- को किराये के रूप में देय माना गया। वादी आगे प्रस्तुत करता है कि दिनांक 16.03.1986 के पट्टा विलेख के अनुसार किराये का परिसर उसी स्थिति में लौटाना था, जिस स्थिति में बैंक ने इसे किराये पर लिया था। अतः किराया, बकाया उपयोग शुल्क और प्रतिवादी द्वारा किए गए नुकसान की पुनर्स्थापन की राशि के रूप में कुल ₹1,75,56,334/- देय है। वादी का तर्क है कि ब्याज की दर 18% प्रति वर्ष त्रैमासिक चक्रवृद्धि के साथ होनी चाहिए क्योंकि यह एक व्यावसायिक लेन-देन था और ब्याज व्यावसायिक दृष्टि से उचित दर पर होना चाहिए। वादी आगे प्रस्तुत करता है कि वर्तमान मामले में लागू ब्याज की दर दंडात्मक प्रकृति की भी होनी चाहिए क्योंकि प्रतिवादी ने दो दशकों से अधिक समय तक वादी का भुगतान विलंबित करने के लिए मुकदमेबाजी को लंबित रखा। वादी यह भी कहता है कि प्रतिवादी ने अपने लिखित बयान में स्वीकार किया है कि वह किराये के परिसर के नए पट्टा विलेख के निष्पादन के संबंध में वादी के संपर्क में था। वादी आगे यह भी कहता है कि दिनांक 20.08.2002 का प्रमाण-पत्र इस बात का प्रमाण है कि प्रतिवादी अपने मासिक ₹1,20,032/- की किराये के दायित्व को अभिस्वीकृत कर रहा है। वादी का कहना है कि स्थापित विधि के अनुसार, एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को किराये का दायित्व स्वीकार करना परिसीमा अवधि को बढ़ाने का प्रभाव डालता है; इसलिए वाद परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं है। वादी यह भी प्रस्तुत करता है कि अन्य सह-स्वामियों/मकान-मालिकों को शामिल

करना आवश्यक नहीं है क्योंकि वादी ने संपत्ति पर अपने अकेले स्वामित्व का प्रमाण प्रस्तुत किया और प्रतिवादी ने वादी को एकमात्र स्वामित्व के अभिलेख प्रस्तुत करने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की थी। वादी ने त्यागपत्र विलेख को जैसे ही तैयार, निष्पादित और पंजीकृत कराया, दायर कर दिया। वादी आगे प्रस्तुत करता है कि प्रतिवादी ने अपने लिखित बयान में कहा कि वादी से उसके एकमात्र स्वामित्व का प्रमाण माँगा गया था, जिसे वादी ने प्रस्तुत नहीं किया। लेकिन यह पहली बार 26.04.2002 को हुआ जब प्रतिवादी बैंक ने संपत्ति पर वादी के एकमात्र स्वामित्व का प्रमाण माँगा था। प्रतिवादी बैंक ने ऐसा कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया कि उसने पहले वादी से एकमात्र स्वामित्व का प्रमाण माँगा हो।

10. इसके विपरीत, प्रतिवादी का कहना है कि प्रतिवादी बैंक संपत्ति सं.16-बी/1, देशबंधु गुप्ता रोड, देव नगर, नई दिल्ली में स्थित बेसमेंट तल, भू तल तथा प्रथम तल (कुल कारपेट क्षेत्रफल 3872 वर्ग फुट) के संबंध में एक वैध किरायेदार रहा है और वह वादी को ₹33,805/- प्रति माह किराया अदा करता रहा है। प्रतिवादी का यह भी तर्क है कि वादी अकेला ही वाद संपत्ति का स्वामी नहीं था/है, बल्कि उक्त संपत्ति के कुल आठ सह-स्वामी/भू-स्वामी हैं। प्रतिवादी आगे यह भी तर्क देता है कि उसने 14.09.1995 तथा 17.10.1995 के पत्रों के माध्यम से वादी को शाखा में आकर समझौता-वार्ता करने हेतु आमंत्रित किया था तथा वाद संपत्ति के संबंध में वादी के एकमात्र स्वामित्व का पूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करने का अनुरोध किया था, किंतु वादी ने इसका पालन नहीं किया।

प्रतिवादी बैंक का कहना है कि इसके पश्चात् दिनांक 02.02.2002, 26.04.2002, 22.05.2002 एवं 22.08.2002 के पत्रों सहित अन्य पत्र भी वादी को भेजे गए, जिनमें स्वामित्व का प्रमाण प्रस्तुत करने को कहा गया था, परंतु वही प्रस्तुत नहीं किया गया, जिसके कारण आवश्यक दस्तावेज़ों के अभाव में मामला विलंबित होता रहा। प्रतिवादी यह भी तर्क देता है कि वादी एवं प्रतिवादी बैंक के मध्य बातचीत एवं समझौता-वार्ता चलती रही, जिसमें किराया अंतिम रूप से तय होने में लगभग 6-7 वर्ष का समय लग गया। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि प्रस्तावित पट्टा विलेख की शर्तों एवं नियमों पर पक्षकारगण के बीच चर्चा हुई तथा प्रतिवादी ने 22.05.2002 का पत्र, जिसे उसके प्राधिकारियों द्वारा निष्पादन/पंजीकरण हेतु स्वीकृत किया गया था, प्रस्तुत किया और उसी को वादी द्वारा भी स्वीकार कर लिया गया। प्रतिवादी का तर्क है कि वादी ने त्यागपत्र विलेख तैयार किए तथा दिनांक 17.06.1999, 03.04.2001, 04.05.2001, 05.06.2002 एवं 06.08.2002 के त्यागपत्रों की प्रतियां, जो संबंधित सह-स्वामियों द्वारा वादी के पक्ष में निष्पादित की गई थीं, अभिलेख पर दाख़िल कीं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि 06.08.2002 तक वादी संपत्ति का एकमात्र स्वामी नहीं था। प्रतिवादी बैंक का तर्क है कि वह ₹33,805/- प्रति माह की दर से वादी एवं अन्य सह-स्वामियों को नकदी आदेशों के माध्यम से किराया अदा करता रहा है। प्रतिवादी बैंक का यह भी कहना है कि उसने 01.01.1996 से ₹1,20,032/- प्रति माह की दर से किराया देने पर कभी सहमति नहीं दी। प्रतिवादी बैंक आगे यह कहता है कि वादी

द्वारा एकमात्र स्वामित्व का प्रमाण प्रस्तुत न किए जाने के कारण संदेह उद्भूत हुआ, जिसके चलते प्रतिवादी बैंक ने किराए के परिसर के संबंध में नए पट्टा विलेख के निष्पादन का विचार त्याग दिया और परिसर को खाली करने का निर्णय लिया। प्रतिवादी बैंक का यह भी तर्क है कि पट्टा विलेख वादी द्वारा प्रतिवादी बैंक की सहमति के बिना तैयार किया गया था। प्रतिवादी बैंक का कहना है कि 23.01.2004 के पत्र द्वारा उसने वादी को सूचित किया कि बैंक ने परिसर समर्पित करने का निर्णय ले लिया है तथा परिसर 31.01.2004 को खाली कर दिया जाएगा और वादी को 01.02.2004 को रसीद के बदले कब्ज़ा लेने के लिए कहा गया था। प्रतिवादी बैंक ने 12.02.2004 का विधिक नोटिस तथा 27.02.2004 का एक और नोटिस अपने अधिवक्ता के माध्यम से भेजकर वादी से खाली किए गए किराए के परिसर का कब्ज़ा लेने का अनुरोध किया, किंतु वादी ने मना कर दिया। प्रतिवादी बैंक का यह भी तर्क है कि 20.08.2002 का प्रमाण-पत्र सद्भावना से इस आधार पर जारी किया गया था कि वादी का पुत्र उच्च अध्ययन हेतु विदेश जा रहा था, जिसके लिए वादी को विदेशी विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने हेतु अपनी वित्तीय स्थिति दर्शाने के लिए उक्त प्रमाण-पत्र की आवश्यकता थी, किंतु अब उस प्रमाण-पत्र का वादी द्वारा दुरुपयोग किया जा रहा है। प्रतिवादी बैंक आगे यह भी कहता है कि इस दस्तावेज़ को प्रतिवादी की ओर से बढ़ी हुई किराया दर की स्वीकृति के रूप में नहीं माना जा सकता। प्रतिवादी बैंक का कहना है कि उसने लगभग 18 वर्षों तक किराए के परिसर का उपयोग किया है, इसलिए सामान्य घिसावट-टूट-फूट

हुई है और स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट के अनुसार कोई गंभीर/पर्याप्त क्षति नहीं हुई है। प्रतिवादी का कहना है कि यह वाद एक ऐसे प्रारूप पट्टा विलेख पर आधारित है जिसे न तो प्रतिवादी बैंक ने कभी स्वीकृत किया और न ही हस्ताक्षरित किया, तथा यह वाद परिसीमा से वर्जित है, अतः ख़ारिज किए जाने योग्य है।

11. पक्षकारगण के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनी गईं तथा अभिलिखित सामग्री का परिशीलन किया गया।

12. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 2(12) में अंतःकालीन लाभ की परिभाषा दी गई है, जो इस प्रकार हैः-

> *"**धारा 2(12)** – अंतःकालीन लाभ से तात्पर्य उस संपत्ति से प्राप्त उन लाभों से है, जिन्हें उस संपत्ति के अवैध कब्ज़े में रहने वाले व्यक्ति ने वास्तव में प्राप्त किया हो, या जिन्हें वह साधारण सावधानी बरतने पर प्राप्त कर सकता था; तथा इसमें ऐसे लाभों पर देय ब्याज भी सम्मिलित होगा, किंतु इसमें अवैध कब्ज़े में रहने वाले व्यक्ति द्वारा किए गए सुधारों से प्राप्त लाभ सम्मिलित नहीं होंगे।"*

13. मकान-मालिक उस किरायेदार के विरुद्ध अंतःकालीन लाभ का हक़दार होता है, जो किरायेदारी की समाप्ति के बाद भी किराए के परिसर में बना रहता है। अब यह भली-भांति स्थापित सिद्धांत है कि किरायेदारी की समाप्ति पर मकान-मालिक जिस राशि को प्राप्त करने का अधिकारी होता है, वह वही राशि

होती है, जो परिसर अवैध कब्ज़े की अवधि के दौरान किराए पर दिए जाने की स्थिति में प्राप्त कर सकता था।

14. पूर्व किरायेदार द्वारा अवैध कब्ज़े की अवधि के दौरान परिसर से प्राप्त होने वाला किराया एक ऐसा तथ्य है, जिसे कब्ज़ा प्राप्ति एवं अंतःकालीन लाभ के लिए दायर वाद में साक्ष्य प्रस्तुत करके सहज रूप से सिद्ध किया जा सकता है। वर्तमान मामले में वादी ने स्थानीय क्षेत्र में स्थित समान प्रकार के परिसरों के किराए के संबंध में कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है। शीर्ष न्यायालय ने ओएनजीसी बनाम सॉ पाइप्स लिमिटेड, (2003) 5 SCC 705 में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि संविदा के उल्लंघन से होने वाले नुकसान की गणना करना संभव हो, तो युक्तियुक्त क्षतिपूर्ति प्रदान की जा सकती है।

15. यद्यपि वादी ने स्थानीय क्षेत्र में स्थित समान परिसरों के किराए के संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है, तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि वादी को पट्टे की समाप्ति के बाद भी परिसर में बने रहने वाले प्रतिवादी के कारण किसी भी अंतःकालीन लाभ का अधिकार नहीं होगा। प्रतिवादी मासिक किरायेदार के रूप में बना रहा और वह किराया अदा करने के लिए बाध्य था। इस न्यायालय की राय में, प्रतिवादी संविदात्मक किराया दर से अधिक किराया अदा करने का दायित्व रखता था, क्योंकि किराया करार में स्वयं यह प्रावधान था कि किराया अवधि की समाप्ति के बाद वृद्धि होगी।

16. शीर्ष न्यायालय की पाँच-न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने फतेह चंद बनाम बलकिशन दास, **AIR 1963 SC 1405** में निम्नलिखित टिप्पणी की हैः-

> *"**10.** भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 74 क्षतिपूर्ति के निर्धारण से संबंधित है और यह दो प्रकार के मामलों पर लागू होती है– (i) जहाँ संविदा में उल्लंघन की स्थिति में अदा की जाने वाली राशि निर्दिष्ट की गई हो, तथा (ii) जहाँ संविदा में दंड स्वरूप कोई अन्य शर्त निहित हो। वर्तमान मामले में हम इस प्रश्न पर विचार करने से संबंधित नहीं हैं कि क्या संविदा के यथोचित पालन हेतु जमा धनराशि की ज़ब्ती से संबंधित शर्त वाली संविदा प्रथम श्रेणी में आती है या नहीं। दंड स्वरूप शर्त के उल्लंघन के मामले में क्षतिपूर्ति का मापदंड धारा 74 के अंतर्गत युक्तियुक्त क्षतिपूर्ति है, जो निर्धारित दंड राशि से अधिक नहीं हो सकती। क्षतिपूर्ति का आकलन करते समय, न्यायालय को–निर्धारित दंड की अधिकतम सीमा के अधीन–मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसी क्षतिपूर्ति प्रदान करने का अधिकार है, जिसे वह युक्तियुक्त समझे। संविदा के उल्लंघन के मामले में क्षतिपूर्ति प्रदान करने का न्यायालय का अधिकार अधिकतम निर्धारित सीमा को छोड़कर असीमित है; किंतु क्षतिपूर्ति युक्तियुक्त होनी चाहिए, और इससे न्यायालय पर यह दायित्व आता है कि वह स्थापित सिद्धांतों के अनुसार क्षतिपूर्ति प्रदान करे। यह धारा निस्संदेह यह कहती है कि पीड़ित पक्षकार उस पक्षकार से, जिसने संविदा का उल्लंघन किया है, क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी है, चाहे यह सिद्ध किया गया हो या नहीं कि उल्लंघन के कारण वास्तविक क्षति या हानि हुई है। इससे केवल "वास्तविक हानि या क्षति" के प्रमाण की आवश्यकता समाप्त होती है; किंतु यह उस स्थिति में क्षतिपूर्ति प्रदान करने को उचित नहीं ठहराती, जब उल्लंघन के परिणामस्वरूप कोई विधिक क्षति हुई ही न हो, क्योंकि संविदा के उल्लंघन के लिए क्षतिपूर्ति केवल उसी हानि या क्षति की पूर्ति के*

लिए दी जा सकती है, जो सामान्य परिस्थितियों में स्वाभाविक रूप से उद्भूत होती है, या जिसे संविदा करते समय पक्षकारगण ने उल्लंघन के परिणामस्वरूप होने की संभावना के रूप में जाना था।

11. *वादी को प्रदान की जाने वाली क्षतिपूर्ति के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व यह देखना आवश्यक है कि क्या धारा 74 उन शर्तों पर लागू होती है, जिनके अंतर्गत संविदा के तहत जमा या अदा की गई राशि की ज़ब्ती का प्रावधान है।* ***यह तर्क दिया गया कि यह धारा अपने शब्दों में केवल उस अधिकार से संबंधित है, जिसके अंतर्गत संविदा का उल्लंघन करने वाले पक्षकार से युक्तियुक्त क्षतिपूर्ति प्राप्त की जाती है, न कि उस अधिकार से, जिसके तहत पीड़ित पक्षकार पहले से प्राप्त राशि को ज़ब्त कर सकता है। तथापि, भारत के कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा की गई यह धारणा कि धारा 74 केवल उन मामलों पर लागू होती है, जहाँ पीड़ित पक्षकार संविदा के उल्लंघन पर कोई राशि प्राप्त करने का प्रयास करता है, और उन मामलों पर लागू नहीं होती जहाँ संविदा के उल्लंघन पर संविदा के अंतर्गत प्राप्त राशि को ज़ब्त करने का प्रयास किया जाता है–इस धारणा का कोई आधार नहीं है। हमारे निर्णय में, "संविदा में दंड स्वरूप कोई अन्य शर्त निहित है" यह अभिव्यक्ति व्यापक रूप से प्रत्येक ऐसी प्रसंविदा पर लागू होती है, जिसमें दंड का तत्व निहित हो–चाहे वह संविदा के उल्लंघन पर भविष्य में धन के भुगतान या संपत्ति की डिलीवरी से संबंधित हो, अथवा पहले से प्रदान की गई धनराशि या अन्य संपत्ति के अधिकार की ज़ब्ती से संबंधित हो। दंडात्मक शर्त को लागू न कर केवल युक्तियुक्त क्षतिपूर्ति प्रदान करने का दायित्व धारा 74 द्वारा विधिक रूप से न्यायालयों पर अधिरोपित किया गया है। अतः सभी ऐसे मामलों में, जहाँ संविदा की शर्तों के अनुसार जमा की गई राशि की ज़ब्ती के लिए दंडात्मक प्रकार की कोई शर्त विद्यमान हो और जिसमें स्पष्ट रूप से ज़ब्ती का प्रावधान किया गया हो, न्यायालय को केवल वही राशि प्रदान करने का अधिकार है, जिसे वह युक्तियुक्त समझे, किंतु वह राशि संविदा में ज़ब्ती के लिए***

निर्दिष्ट अधिकतम राशि से अधिक नहीं हो सकती। *हम संक्षेप में भारत के उच्च न्यायालयों द्वारा निर्णयित कुछ उदाहरणात्मक मामलों का भी उल्लेख कर सकते हैं, जिनमें इससे भिन्न दृष्टिकोण अपनाया गया है।*

xxx

14. इन मामलों में प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालयों ने धारा 74 की पहली शर्त में प्रयुक्त शब्दों "ऐसे उल्लंघन की स्थिति में अदा की जाने वाली" पर ही ध्यान केंद्रित किया और धारा में उल्लिखित दूसरी शर्त, अर्थात् "संविदा में दंड स्वरूप कोई अन्य शर्त निहित हो" की व्यापकता पर विचार नहीं किया। पहली शर्त में प्रयुक्त शब्द "अदा की जाने वाली" दूसरी शर्त, जो दंड स्वरूप शर्त से संबंधित है, को सीमित नहीं करते। "यदि संविदा में दंड स्वरूप कोई अन्य शर्त निहित हो" यह अभिव्यक्ति धारा के कार्यक्षेत्र को व्यापक बनाती है और इसे दंड स्वरूप सभी प्रकार की शर्तों पर लागू करती है—चाहे वह शर्त धनराशि के भुगतान से संबंधित हो या किसी अन्य स्वरूप की हो, जैसे कि पहले से अदा की गई धनराशि की ज़ब्ती का प्रावधान। इस अभिव्यक्ति में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह संकेत मिले कि ऐसी शर्त केवल संविदा के उल्लंघन के बाद कुछ देने या करने से ही संबंधित होनी चाहिए। ***यह मानने का कोई आधार नहीं है कि "संविदा में दंड स्वरूप कोई अन्य शर्त निहित हो" की अभिव्यक्ति केवल उन मामलों तक सीमित है, जहाँ उल्लंघन की स्थिति में धन के भुगतान या संपत्ति की आपूर्ति का प्रावधान हो, और इसमें वे प्रसंविदा शामिल नहीं होती, जिनके अंतर्गत संविदा की शर्तों के अनुसार अदा की गई धनराशि या सुपुर्द की गई संपत्ति—जो संविदा की स्पष्ट शर्तों या स्पष्ट निहितार्थ के अनुसार ज़ब्ती योग्य है—को ज़ब्त किया जा सकता है।***

15. *धारा 74 उस विधि की घोषणा करती है, जो संविदा के उल्लंघन की स्थिति में दायित्व से संबंधित है, जहाँ क्षतिपूर्ति पक्षकारगण के समझौते द्वारा पूर्व-निर्धारित हो, अथवा जहाँ दंड स्वरूप कोई शर्त निहित हो। तथापि, इस उपबंध का प्रयोग केवल*

उन्हीं मामलों तक सीमित नहीं है, जहाँ पीड़ित पक्षकार वादी के रूप में अनुतोष की मांग करता है। यह धारा किसी भी पक्षकार को कोई विशेष लाभ प्रदान नहीं करती; यह मात्र यह विधिक सिद्धांत स्थापित करती है कि संविदा में क्षतिपूर्ति पूर्व-निर्धारित करने वाली किसी भी शर्त या दंड स्वरूप किसी संपत्ति की ज़ब्ती का प्रावधान होने के बावजूद, न्यायालय पीड़ित पक्षकार को केवल वही युक्तिसंगत क्षतिपूर्ति प्रदान करेगा, जो अनुबद्ध निर्दिष्ट राशि या निर्धारित दंड से अधिक न हो। न्यायालय का क्षेत्राधिकार इस आकस्मिक परिस्थिति पर निर्भर नहीं करता कि चूक करने वाला पक्षकार वाद में वादी है या प्रतिवादी। "संविदा का उल्लंघन करने वाले पक्षकार से प्राप्त करने" जैसी अभिव्यक्ति का यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि चूक करने वाले पक्षकार द्वारा अदा की गई राशियों को समायोजित करने का न्यायालय का अधिकार, संविदा के उल्लंघन की शिकायत करने वाले पक्षकार के दावे पर विचार करते समय प्रयोग नहीं किया जा सकता। न्यायालय का दायित्व है कि वह प्रत्येक मामले में संविदा के उल्लंघन पर वादी को प्रतिवादी से प्राप्त होने वाली युक्तियुक्त क्षतिपूर्ति का निर्धारण करे। ऐसी क्षतिपूर्ति का निर्धारण उल्लंघन की तिथि पर विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।

16. इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि प्रतिवादी की चूक के परिणामस्वरूप वादी को, संपत्ति के कब्ज़े से वंचित रखे जाने से हुई हानि को छोड़कर, कोई अन्य क्षति हुई हो। यह भी कोई प्रमाण नहीं है कि संविदा में निर्धारित तिथि के बाद संपत्ति के मूल्य में कोई कमी आई हो; न ही यह दिखाया गया है कि कोई अन्य विशेष क्षति हुई हो। संविदा में ₹25,000 की ज़ब्ती का प्रावधान था, जिसमें ₹1,039 अग्रिम धनराशि के रूप में तथा ₹24,000 क्रय मूल्य के एक भाग के रूप में अदा किए गए थे। प्रतिवादी ने यह स्वीकार किया है कि वादी ₹1,000 की राशि, जो अग्रिम धनराशि के रूप में अदा की गई थी, ज़ब्त करने का अधिकारी था। तथापि, हम उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हो सकते कि

कुल संविदा मूल्य के सापेक्ष 13 प्रतिशत राशि को युक्तियुक्त क्षतिपूर्ति माना जा सकता है, क्योंकि हमारे मत में यह एक मनमाने अनुमान पर आधारित है। वादी यह सिद्ध करने में असफल रहा कि प्रतिवादी द्वारा किए गए संविदा के उल्लंघन के कारण उसे कोई वास्तविक क्षति हुई है, और हमें ऐसा कोई सिद्धांत नहीं मिलता जिसके आधार पर सहमत मूल्य के दस प्रतिशत के बराबर क्षतिपूर्ति वादी को प्रदान की जा सके। वादी को ₹1,000 की राशि, जो अग्रिम धनराशि थी, क्षतिपूर्ति के रूप में पहले ही प्रदान की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त, ₹24,000 की शेष राशि का उपयोग भी वादी के पास रहा, और यह उचित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस संपूर्ण अवधि में उसे उस राशि से लाभ प्राप्त होता रहा होगा। अतः संविदा के उल्लंघन से उद्भूत किसी भी क्षति के प्रमाण के अभाव में, हमारे विचार में ₹1,000 (अग्रिम धन) की ज़ब्त की गई राशि तथा इस संपूर्ण अवधि में ₹24,000 की शेष राशि के उपयोग से वादी को प्राप्त लाभ, उसके लिए पर्याप्त क्षतिपूर्ति है। यह भी जोड़ा जा सकता है कि वादी ने कब्ज़े से वंचित रखे जाने के लिए अलग से अंतःकालीन लाभ का दावा किया था, जिसके लिए उसे डिक्री भी प्राप्त हो चुकी है; अतः वादी के कब्ज़े से बाहर रहने के तथ्य को इस प्रयोजन के लिए क्षतिपूर्ति निर्धारण में ध्यान में नहीं लिया जा सकता। अतः उच्च न्यायालय द्वारा वादी को ₹11,250 क्षतिपूर्ति के रूप में प्रदान करने वाली डिक्री को अपास्त किया जाना आवश्यक है।"

(जोर दिया गया)

17. इस न्यायालय की एक समन्वित न्यायपीठ ने <u>मैसर्स एम.सी. अग्रवाल एचयूएफ बनाम मैसर्स सहारा इंडिया एवं अन्य</u>, **2011 SCC OnLine Del**

3715 में, किरायेदार द्वारा परिसर में अधिक समय तक बने रहने के मामले में क्षतिपूर्ति की गणना करते हुए, निम्नलिखित टिप्पणी की हैः-

> *"14. अतः अब जो प्रश्न निर्धारित किया जाना है, वह यह है कि उस स्थिति में मकान-मालिक को कितने अंतःकालीन लाभ प्रदान किए जाएँ, जब मकान-मालिक द्वारा क्षेत्र में प्रचलित किराए के संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया हो। यद्यपि मकान-मालिक की ओर से इस संबंध में कोई तर्क प्रस्तुत नहीं किया गया है, तथापि मैं इस न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का लाभ मकान-मालिक को देना उपयुक्त समझता हूँ, जिनमें भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 एवं 57 के प्रावधानों को लागू करते हुए शहरी क्षेत्रों में किराए में वृद्धि का न्यायिक संज्ञान लिया गया है। मेरे मत में, यह ध्यान में रखते हुए कि परिसर दिल्ली के सर्वाधिक केंद्रीय रूप से स्थित वाणिज्यिक क्षेत्रों में से एक, अर्थात् कनॉट प्लेस में स्थित है, प्रत्येक वर्ष 15% की वृद्धि प्रदान की जानी चाहिए (और अन्यथा ऐसा कुछ भी मेरे समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे यह वृद्धि कम मानी जाए) उस अवधि के दौरान, जब किरायेदार किराए के परिसर में अवैध रूप से बना रहा। दूसरे शब्दों में, अवैध कब्ज़े के प्रथम वर्ष के लिए किरायेदार संविदात्मक किराए से 15% अधिक किराया अदा करेगा। अवैध कब्ज़े के दूसरे वर्ष के लिए 15% की वृद्धि मूल संविदात्मक किराए के साथ-साथ पूर्ववर्ती 15% की वृद्धि पर भी लागू होगी। इसी प्रकार यह गणना अवैध कब्ज़े की सभी आगामी वर्षों के लिए की जाएगी, जब तक कि परिसर 3.4.2005 को खाली नहीं कर दिया गया। मैं इस संदर्भ में इस न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ के निर्णय एस. कुमार बनाम जी.आर. कठपालिया, 1999 RLR 114 पर निर्भरता व्यक्त करता हूँ तथा उसका उल्लेख करता हूँ, जिसमें खंड न्यायपीठ ने मकान-मालिक को लाभ प्रदान करते हुए किराए में वृद्धि का न्यायिक संज्ञान लिया और संविदात्मक किराए से अधिक दर पर अंतःकालीन लाभ प्रदान किए थे।*

15. जहाँ तक यह प्रश्न है कि मकान-मालिक को अंतःकालीन लाभ आज तक मिलने चाहिए या नहीं, क्योंकि मकान-मालिक के अनुसार सम्पूर्ण परिसर अभी तक उसे वापस नहीं किया गया है, मैं यह टिप्पणी करता हूँ कि मकान-मालिक का तर्क यह है कि किराए के परिसरों का लगभग केवल 60% ही वापस किया गया है, जबकि 40% अभी तक लौटाया नहीं गया है। इस तथ्य को किरायेदारों के अधिवक्ता ने कड़ी आपत्ति के साथ खारिज किया है। मैं यह अभिनिर्धारित करता हूँ कि यह मामला डिक्री के निष्पादन से संबंधित है, अर्थात् यह निर्धारित करना कि क्या पूरे परिसर का कब्ज़ा मकान-मालिक को दिया गया है या नहीं। यदि निष्पादन के दौरान यह पाया जाता है कि 3.4.2005 को मकान-मालिक को जो परिसर सौंपा गया, वह पूरा परिसर नहीं था, तो उस स्थिति में निष्पादक न्यायालय द्वारा ऐसा निष्कर्ष निकाले जाने पर मकान-मालिक उस समय अपने इन उपचारों के हकदार होंगे। जहाँ तक वर्तमान मामला है, यह केवल कब्ज़ा प्राप्ति की डिक्री की वैधता से संबंधित है, और मैं सम्पूर्ण वाद परिसर/किराए के परिसरों के संबंध में कब्ज़ा प्राप्ति की डिक्री की पुष्टि करता हूँ।

xxx

19. मेरे विचार में, कानून के विरुद्ध कोई विबंध नहीं हो सकता। किसी तीन वर्ष की अवधि के लिए पट्टा केवल तभी बनाया जा सकता है, जब पट्टे का विकल्प तीन वर्षों के लिए विस्तार करने का अधिकार प्रयोग किया गया हो और उस समय एक लिखित और पंजीकृत दस्तावेज़ तैयार और पंजीकृत किया गया हो, जैसा कि 1882 के संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 और 1908 के रजिस्ट्रेशन अधिनियम की धारा 17(1)(ख) एवं (घ) के अनुसार विधिक रूप से आवश्यक है। यदि तीन वर्ष की निश्चित अवधि के लिए कोई पंजीकृत पट्टा विलेख मौजूद नहीं है, तो किराये के परिसर में केवल इस कारण नहीं रहता कि उसके और मकान-

मालिक के बीच तीन वर्ष के पट्टे के आधार पर कोई संबंध है, बल्कि वह केवल पट्टा अवधि की समाप्ति के बाद अवैध कब्ज़े वाला बन जाता है। इसलिए मैं किरायेदारों के अधिवक्ता के तर्क से सहमत नहीं हूँ और यह अभिनिर्धारित करता हूँ कि चूंकि इस मामले में किरायेदारी की अवधि 30.11.2000 को समय-सीमा समाप्ति द्वारा समाप्त हो गई थी और वाद 3.4.2001 को दायर किया गया था, अतः स्पष्ट रूप से किरायेदार 1.12.2000 से अंतःकालीन लाभ का भुगतान करने के लिए दायी होगा।"

18. वादी दिनांक 01.01.1996 से 31.05.2004 की अवधि के लिए किराए के बकाया के साथ-साथ उस पर ब्याज की मांग कर रहा है। यह निर्विवाद तथ्य है कि पट्टा विलेख वर्ष 1995 में समय-सीमा की समाप्ति से समाप्त हो गया था। यह भी स्वीकार किया गया है कि प्रतिवादी ने किराए के परिसर में बने रहने में रुचि दिखाई थी। यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि पक्षकारगण के बीच समझौता-वार्ताएँ चल रही थीं।

19. प्रदर्श P-15 दिनांक 22.05.2002 का वह आवरण पत्र है, जो प्रतिवादी ने प्रारूप पट्टा विलेख की प्रति के साथ वादी को भेजा था। वह प्रारूप पट्टा विलेख, जिसे PW1/10 के रूप में चिह्नित किया गया है और प्रतिवादी ने भेजा था, यह दर्शाता है कि पट्टा विलेख 01.01.2001 से 31.12.2005 तक पाँच वर्ष की अवधि के लिए निष्पादित किया जा रहा है। इसमें प्रतिवादी ने ₹31/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह की दर से, कुल कारपेट क्षेत्र 3,872 वर्ग फुट के

लिए, जो कुल ₹1,20,032/- प्रति माह के बराबर है, परिसरों को किराए पर लेने के लिए सहमति दी थी।

20. प्रतिवादी का वर्ष 1995 से 2004 तक परिसरों पर कब्ज़् बना रहा। संविदा की शर्तों के अनुसार, प्रतिवादी को परिसर का खाली कब्ज़ा सौंपना था, लेकिन प्रतिवादी ने वाद परिसरों का खाली कब्ज़ा नहीं सौंपा। पक्षकारगण के बीच समझौता-वार्ताएँ चल रही थीं। प्रदर्श P-9, दिनांक 20.08.2002 का पत्र, प्रतिवादी बैंक के वरिष्ठ प्रबंधक द्वारा जारी किया गया था, जिसमें प्रतिवादी द्वारा भुगतान योग्य राशि का उल्लेख किया गया है। यह पत्र 22.05.2002 के पत्र के बाद भेजा गया था, जिसके द्वारा पक्षकारगण के बीच प्रारूप पट्टा विलेख का आदान-प्रदान हुआ था। दस्तावेज़ी सामग्री से यह भी संकेत मिलता है कि 20.08.2002 तक प्रतिवादी बैंक द्वारा वादी को किराए के रूप में ₹1,20,032/- प्रति माह के हिसाब से कुल ₹49 लाख देय थे। इस पत्र को प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किया गया है।

21. वरिष्ठ प्रबंधक प्रतिवादी बैंक का कर्मचारी है। वरिष्ठ प्रबंधक ने वादी को देय राशि के संबंध में स्वीकृति दी है। हालांकि DW-1 और DW-2 ने कहा कि किराए पर निर्णय अभी तक नहीं लिया गया था, लेकिन वह प्रारूप पट्टा विलेख जो प्रतिवादी ने वादी को भेजा था, जिसमें किराए की राशि का उल्लेख है, और बैंक के वरिष्ठ प्रबंधक का प्रमाण-पत्र यह संकेत देता है कि बैंक ने उस समय ₹1,20,032/- प्रति माह के किराए को स्वीकार कर लिया था। प्रतिवादी

के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि शाखा प्रबंधक के पास ऐसे प्रमाण-पत्र जारी करने का कोई अधिकार नहीं था और यह प्रमाण-पत्र वादी के अनुरोध पर उसके पुत्र के प्रवेश हेतु दिया गया था, पर यह तर्क स्वीकार्य नहीं है। पक्षकारगण के बीच 1995 से 2002 तक समझौता-वार्ताएँ चलती रहीं, जो कि सात वर्षों की अवधि है। बैंक ने स्वीकार किया कि उसने 22.05.2002 के पत्र के बाद भी परिसर में कब्ज़ा बनाए रखा, जिस पत्र के द्वारा प्रारूप पट्टा विलेख का आदान-प्रदान किया गया था। इसका अर्थ है कि प्रतिवादी बैंक ने अपने किराए के दायित्व को स्वीकार किया। अतः बैंक को वादी को संबंधित परिसरों में कब्ज़े के लिए क्षतिपूर्ति देनी होगी। वादी ने यह प्रमाण नहीं प्रस्तुत किया कि 1995 से 2002 के बीच क्षेत्र में सामान्य किराया क्या था। इस न्यायालय के समक्ष केवल प्रारूप पट्टा विलेख ही उपलब्ध है।

22. प्रमाण-पत्र और प्रारूप पट्टा विलेख के परिप्रेक्ष्य में, इस न्यायालय का मत है कि वादी निश्चित रूप से 01.01.2001 से 31.01.2004 तक न्यूनतम ₹1,20,032/- प्रति माह के किराए का हकदार है, जो लगभग ₹44,41,184/- बनता है। प्रमाण-पत्र में दिनांक 20.08.2002 के पत्र के अनुसार यह राशि ₹49,00,000/- बताई गई है।

23. प्रतिवादी का यह अभिवाक् कि दावा परिसीमा से वर्जित है, स्वीकार्य नहीं है। तथ्य यह है कि दिनांक 20.08.2002 वाला प्रमाण-पत्र प्रतिवादी बैंक द्वारा दायित्व की स्वीकृति के रूप में माना जाता है। इसके साथ ही यह तथ्य कि

बैंक वादी के साथ समझौता-वार्ता की प्रक्रिया में था, यह दर्शाता है कि बैंक ने स्वयं अपने दायित्व को स्वीकार किया, जिससे उसके दायित्व का दायरा और अवधि बढ़ जाती है।

24. उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में, वादी 01.01.1996 को किरायेदारी की समाप्ति की तिथि से लेकर 31.12.2000 तक भी किराए का हकदार है। यह तथ्य कि पट्टा विलेख समाप्त हो गया, का अर्थ यह नहीं है कि किरायेदारी समाप्त हो गई। प्रतिवादी महीना-दर-महीना किरायेदार बन जाएगा और किराए का भुगतान करने के लिए दायी होगा। अतः 01.01.1996 से 31.01.2004 तक का कुल किराया ₹1,16,43,104/- होगा।

25. प्रतिवादी का यह प्रतिविरोध कि चूंकि यह विवाद था कि किराया किसे दिया जाना था, इसलिए किराया वादी को नहीं दिया गया, स्वीकार्य नहीं है। किराया करार के अनुसार देना था। किसी भी स्थिति में, वादी को स्वयं और अन्य सह-मालिकों की ओर से किराया प्राप्त करने का अधिकार था। इस मुद्दे पर न्यायालय को विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि 2002 के अंत तक सभी अन्य सह-स्वामियों ने अपने हिस्से का त्याग वादी के पक्ष में कर दिया था। यह न्यायालय केवल प्रतिवादी को निर्देश दे रहा है कि वह 01.01.1996 से लेकर वाद संपत्ति के खाली किए जाने तक के उपयोग और कब्ज़े के लिए अंतःकालीन लाभ के रूप में किराया अदा करे, जो कि विधिक रूप से प्रतिवादी के दायित्व में है और वादी के अधिकार में आता है। इसके

अतिरिक्त, वादी को अन्य बकाया राशियों का भी हकदार होगा, जैसे कि पानी के बकाया शुल्क ₹51,902/- और बिजली के बकाया शुल्क ₹15,739/-, जैसा कि याचिका में मांग की गई है।

26. अतः यह न्यायालय वादी के पक्ष में यह आदेश देने के लिए प्रवृत्त है कि प्रतिवादी को 01.01.1996 से 31.01.2004 तक परिसरों के उपयोग और कब्ज़े के लिए ₹1,17,10,745/- किराए के रूप में अदा करना होगा, साथ ही याचिका में मांगी गई अन्य राशियां भी देय होंगी। वादी वाद दायर करने की तिथि से भुगतान की तिथि तक 9% वार्षिक ब्याज का भी अधिकार होगा।

27. अतः डिक्री शीट इसी अनुसार तैयार की जाए।

28. वाद, यदि कोई लंबित आवेदन(आवेदनों) हैं, उनके साथ निपटान किया जाता है।

न्या. सुब्रमोणयम प्रसाद

20 फरवरी, 2025
आर जे/एच एस के

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*